Core-12

भारतीय काव्य शास्त्र

Unit-1

शब्द शक्ति

(1) शब्द शक्ति की परिभाषा :—

(i) किसी भी शब्द में अन्तरनीहित अर्थ को प्रकट करनेवाले व्यापार को शब्द शक्ति कहते है।

(ii) जिस शब्द को समझने के लिए जिस शक्ति का प्रयोग करते हैं, उसे शब्द शक्ति कहते हैं।

(iii) जो हमें तुरन्त समझ में नहीं आता है उसे अलग तरीके से समझने के लिए जिस शक्ति का प्रयोग करते है, उसे हम शब्द शक्ति कहते है।

(iv) शब्द के अर्थ का बोध करनेवाली शक्ति को शब्द शक्ति कहते हैं।

शब्द के भेद—

शब्द में तीन अर्थ निहित रहते हैं या शब्द के अर्थ तीन प्रकार के हो सकते हैं—

(1) वाच्यार्थ :— जो शब्द सीधा सांकेतिक अर्थ प्रकट करे, उसे वाचक शब्द और उसके अर्थ को वाच्यार्थ कहते हैं। इसे मुख्यार्थ भी कहते हैं।

(ii) लक्ष्यार्थ :— जब शब्द अपने वाच्यार्थ या मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ देता है तो उस अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं।

उदाहरण :—

'तुम तो निरे गधे हो'

इसमें 'गधा' शब्द का तात्पर्य चार पैरों वाले पशु से नहीं है।

(III) व्यंग्यार्थ :- जहाँ शब्दार्थ में व्यंग्य का भाव छिपा रहता है, उसे व्यंजक शब्द और उस अर्थ को व्यंग्यार्थ कहा जाता है। यह अभिधा और लक्ष्यार्थ से आगे की स्थिति है।

शब्द-शक्तियों के भेद-

शब्द के अर्थ के आधार पर शब्द-शक्तियों के तीन रूप माने गये -

(I) अभिधा शब्द-शक्ति
(II) लक्षणा शब्द-शक्ति
(III) व्यंजना शब्द-शक्ति

(I) अभिधा शब्द-शक्ति :-

जो शब्द पढ़ते ही हमें उसका अर्थ जल्दी समझ में आ जाता है, उसे हम अभिधा कहते है।

उदाहरण :-

(I) राम जा रहा है।
(II) सीता दौड़ रही है।
(III) राम खा रहा है।

अभिधा तीन प्रकार के है -

(I) रूढ़
(II) यौगिक
(III) योगरूढ़

(I) रूढ़ :- जो शब्द परम्परा से प्रचलित है, जिनमें प्रत्यय आदि जोड़कर परिवर्तन नहीं होता, जिनके खण्ड भी नहीं हो सकते, अतः इनका अर्थ सर्वमान्य प्रचलित अर्थ होता है।

उदाहरण :- आँख, वृक्ष

(ii) यौगिक :- ये शब्द दो शब्दों के योग से बने होते है। ये अपने मूल अर्थ से दूसरे अर्थ को भी प्रकट करते है। यौगिक का अर्थ है 'मिलाया हुआ'।

उदाहरण :-

(i) विद्या + आलय - विद्यालय

(ii) राकेश - राका + ईश (रात्रि का ईश)

(iii) योगारूढ :- ऐसे शब्द जो साधारण अर्थ को छोड़ विशेष अर्थ ग्रहण करें, उसे योगारूढ कहते है।

उदाहरण :-

(i) जलज (जल + ज) जल में जन्म लेने वाला, पर रूढि के आधार पर इसका अर्थ कमल से ही लिया जाता है।

(ii) नीलकण्ठ - शिव जी के लिए प्रयोग किया जाता है।

(iii) प्रेमचंद - उपन्यास का सम्राट

(2) लक्षणा :-

(i) जब हम कुछ शब्द पढ़ते है उसके अर्थ को समझने में बाधा उत्पन्न होती है, उसे लक्षणा कहते है।

(ii) इसमें मुहावरे का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण :-

(i) नीलकण्ठ

(iii) लक्षणा के दो भेद होते है -

(i) रूढ

(ii) प्रयोजनवती

रूढ - राजस्थान वीर है।

प्रयोजनवती - गंगा पर गाँव है।

लक्षणा
- रूढ़ लक्षणा
- प्रयोजनवती लक्षणा
  - गौणी लक्षणा
    - सारोपा लक्षणा
    - साध्यवसाना लक्षणा
  - शुद्धा लक्षणा
    - उपादान लक्षणा
    - लक्षण लक्षणा

(iv) प्रयोजनवती लक्षणा के दो भेद होते हैं-
(i) गौणी लक्षणा
(ii) शुद्धा लक्षणा

(i) गौणी लक्षणा - जहाँ समान गुण - धर्म के आधार पर लक्ष्यार्थ प्राप्त किया जाता है वहाँ गौणी लक्षणा होती है।
उदाहरण :- कर-कमल में,
कर (हाथ) का सादृश्य कमल से दिखाया गया है। यहाँ गौणी लक्षणा है।

(ii) शुद्धा लक्षणा :- जहाँ मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में कोई समानता न हो, अपितु उनमें सादृश्य से भिन्न सम्बन्ध हो वहाँ शुद्धा लक्षणा होती है।
उदाहरण :- सवारियाँ बैठ जाय
यहाँ सवारियों का अर्थ किसी सवारी से न होकर वास्तव में सवार होने वाले लोगों से है। यहाँ शुद्धा लक्षणा है।

(v) गौणी लक्षणा के दो भेद होते हैं -
(i) सारोपा लक्षणा
(ii) साध्यवसाना लक्षणा

(i) सारोपा लक्षणा - जब उपमेय पर उपमान का आरोप हो तो उस में उपमेय और उपमान दोनों अपने आप आ जाते हैं। ऐसी स्थिति में वहाँ सारोपा लक्षणा होता होती है।

उदाहरण :- 'विश्वनाथ कुलभूषण हैं'
इस वाक्य में विश्वनाथ भी हैं जिस पर आरोप किया गया है और भूषण भी है जो विश्वनाथ पर आरोपित हुआ है।

(ii) साध्यवसाना लक्षणा - इस लक्षणा में आरोप का विषय लुप्त रहता है, अर्थात उसका उल्लेख शब्दों द्वारा नहीं किया जाता, उसे साध्यवसाना लक्षणा कहते हैं।

उदाहरण :- 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते।'
यहाँ 'लातों के भूत' धृष्ट और ढीठ व्यक्तियों के लिए कहा गया है, किन्तु उनका अलग अलग उल्लेख नहीं किया गया है, परन्तु 'लातों के भूत' (उपमान) में ही वे धृष्ट और ढीठ व्यक्ति (उपमेय) अध्यवसित है।

(vi) शुद्धा लक्षणा के दो भेद होते हैं -
(i) उपादान लक्षणा
(ii) लक्षण लक्षणा

(i) उपादान लक्षणा :- उपादान अर्थात सामग्री। जहाँ पर मुख्यार्थ बना रहे और अपनी

कार्य - पूर्ति के लिए अन्य अर्थों का भी ग्रहण करे वहाँ उपादान लक्षणा होती है।

उदाहरण :- द्वार रखाना

यहाँ यह अर्थ नहीं कि केवल द्वार पर ही बैठा रहे, परन्तु पूरे घर और उसके आसपास की भी रखवाली करे। 'यहाँ घर की रखवाली' अर्थ के साथ पूरे घर की रखवाली वाला अन्य भी निकलता है। यहाँ उपादान लक्षणा है।

(ii) लक्षण लक्षणा :- जहाँ लक्ष्यार्थ को सिद्ध करने के लिए मुख्यार्थ अपने को मिटा दे वहाँ लक्षण लक्षणा होती है। इसमें मुख्यार्थ छिपा रह जाता है, उसका कोई अर्थ नहीं होता।

उदाहरण :- काको मन बांधे न यह जूरा बांधनि हार।

(B) व्यंजना :-

अभिधा और लक्षणा द्वारा जब किसी अर्थ का बोध नहीं हो पाता तो उस स्थिति में जिस तीसरी शब्द-शक्ति द्वारा अर्थ का बोध होता है, उसे व्यंजना शब्द-शक्ति कहते हैं।

काव्य प्रयोजन

काव्य प्रयोजन :-

काव्य - कविता
प्रयोजन - उद्देश्य
काव्य प्रयोजन - काव्य प्रयोजन का अर्थ काव्य रचना का उद्देश्य है।

प्रयोजनम् बिना तु मंदो अपिना प्रवर्तते
अर्थात कोई भी कार्य बिना प्रयोजन (उद्देश्य) के नहीं किया जा सकता है।

(i) काव्य किस उद्देश्य से लिखा जाता है और किस उद्देश्य से पढ़ा ~~जान~~ जाता है, इसे दृष्टिगत रखकर काव्य प्रयोजनों पर कवि और पाठक की दृष्टि से विस्तृत विचार विमर्श काव्यशास्त्र में किया गया है।

(ii) काव्य प्रयोजन काव्य प्रेरणा से अलग है। क्योंकि काव्य प्रेरणा का अभिप्राय है काव्य कि रचना के लिए प्रेरित करनेवाले तत्व, जबकि काव्य प्रयोजन का अभिप्राय है काव्य रचना के बाद में प्राप्त होनेवाले लाभ।

संस्कृत के आचार्य का इस प्रयोजन के लिए मत :-

(i) आचार्य भरतमुनि के अनुसार उनका जो ग्रन्थ है वह 'नाट्यशास्त्र' है।

(ii) भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में लिखा है -

धर्म यसस्यम आयुष्यम हितम् बुद्धि विवर्धनम्
लोकपदेश जननम् नाट्य मेतद् भविष्यति

एक नाटक (नाट्यकाव्य) लेखन के निम्न छह प्रयोजन माने हैं -

(i). धर्म
(ii) यस
(iii) आयु
(iv) हित

(v) बुद्धि का विकास
(vi) लौकिक ज्ञान

(11) दुःखार्त्तानां श्रमार्त्तानां शोकार्त्तानां तपस्विनाम्
विश्रामजननं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति
अर्थात् दुखार्थ श्रमार्थ एवं शोकार्थ व्यक्ति को सुख और शान्ति की प्राप्ति ही काव्य लेखन का प्रयोजन माने है।

(2) भामह :-
(1) आचार्य भामह के ग्रन्थ का नाम 'काव्यालंकार' है।
(11) उन्होंने अपने इस ग्रन्थ में लिखा है -
धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति प्रीतिं कीर्तिं च साधुकाव्य निबन्धनम् ॥
अर्थात् आचार्य भामह ने काव्य के निम्न प्रयोजन स्वीकार किए हैं -
(1) धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति होना।
(11) कलाओं में निपुणता प्राप्त करना।
(111) कीर्ति (यश) प्रीति (आनंद) की प्राप्ती होना काव्य प्रयोजन कहलाता है।

(3) आचार्य मम्मट :-
(1) आचार्य मम्मट के ग्रन्थ का नाम 'काव्यप्रकाश' है।
काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥
मम्मट ने मूलतः छह प्रयोजन बताये हैं -
(1) यश-प्राप्ति (यशसे)
(11) अर्थ की प्राप्ति (अर्थकृते)
(111) लोकव्यवहार का ज्ञान (व्यवहारविदे)

(iv) अनिष्ट का निवारण
(शिवेतर) (क्षतये)

(v) आत्मशांति
(vi) कान्तासम्मित उपदेश

(i) यश-प्राप्ति – काव्यलेखन से कवि को यश प्राप्त होता है और वह सदा के लिए अमर हो जाता है।

(ii) अर्थ प्राप्ति – काव्य लेखन से कवि को अर्थ अर्थात् कवि को धन की प्राप्ति होती है।

(iii) लोक व्यवहार का ज्ञान – इसका संबंध पाठकों से है अर्थात् एक श्रेष्ठ काव्य के पठन से पाठकों को मान्योचित शिक्षा प्राप्त होती है।

(iv) अनिष्ट का निवारण – शिवेतर का अर्थ हुआ असंगत और क्षतये का अर्थ हो गया विनाश। अर्थात् काव्य लेखन से कवि के एवं काव्य के पठन से पाठक के अनिष्ट का निवारण होता है।

(v) आत्मशांति – इसका संबंध मुख्यतः पाठक से है अर्थात् काव्य पठन से पाठक को पढ़ने के साथ ही आनंद का अनुभव होता है और उसे परमशांति की प्राप्ति होती है।

(vi) कान्तासम्मित उपदेश – यह उपदेश तीन प्रकार के माने जाते हैं। (i)
(i) प्रभुसम्मित उपदेश – ऐसा उपदेश जो हमारे लिए हितकर तो होता है परन्तु रुचिकर नहीं होता।

वह प्रभुसम्मित उपदेश कहलाता है।

(ii) मित्रसम्मित उपदेश - यह उपदेश हितकर भी होता है और रुचिकर भी परन्तु इसकी अवहेलना भी की जा सकती है।

(iii) कान्तासम्मित उपदेश - यह उपदेश हितकर भी होता है और रुचिकर भी होता है। तथा इसकी कभी अवहेलना भी नहीं की जा सकती है। काव्य का उपदेश इसी श्रेणी का माना जाता है।

हिन्दी कवियों का इस प्रयोजन के लिए मत:-

(i) तुलसीदास - तुलसीदास ने 'स्वान्तः सुखाय' को साहित्य का उद्देश्य मानते हुए लिखा है:-

स्वान्तः सुखाय तुलसी रघुनाथ गाथा

(ii) कुलपति मिश्र - आचार्य कुलपति मिश्र ने यस, धन, आनंद और व्यवहार ज्ञान को काव्य का प्रयोजन बताया है।

(iii) सोमनाथ - सोमनाथ ने कीर्ति, धन, मनोरंजन और उपदेश को काव्य का प्रयोजन स्वीकार किया है।

(iv) मैथिलीशरण गुप्त - गुप्त जी काव्य का प्रयोजन केवल मनोरंजन नहीं अपितु उपदेश स्वीकार करते हुए लिखते हैं:-

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए॥

(v) डॉ. नगेन्द्र - डॉ. नगेन्द्र की दृष्टि में काव्य के मूलतः दो प्रयोजन है-

(I) आनंद
(II) लोकमंगल

(vi) डॉ. गुलाबराय - गुलाबराय के मत में रसानन्द ही काव्य का रस है।

(vii) प्रेमचंद - साहित्य का उद्देश्य हमारी अनुभूति की तिव्रता को बढ़ाना है।

(viii) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - शुक्ल ने काव्य प्रयोजनों पर विस्तार से विचार किया है और वे काव्य का प्रमुख प्रयोजन रसानुभूति मानते हैं।

पाश्चात्य चिंतकों का मत है—

(I) सुकरात - इसके अनुसार दैवी प्रेरणा काव्य की मूल प्रेरणा है।

(II) प्लेटो - प्लेटो लोकमंगल को काव्य का चरम लक्ष्य मानते हैं।

(III) अरस्तू - इनके अनुसार कला का विशेष उद्देश्य आनन्द है।

(IV) हॉरेस - आनंद और लोककल्याण को ही काव्य का प्रयोजन स्वीकार करते हैं।

(V) मैथ्यू आर्नोल्ड - इनकी दृष्टि में जीवन की व्याख्या करना ही काव्य का प्रयोजन है।

(vi) ड्राइडन - इनके अनुसार स्वान्तः सुखाय और परजनहिताय काव्य के प्रयोजन है।

काव्य लक्षण

काव्य की परिभाषा :-

(i) पद्यात्मक रचना को हम काव्य कहते हैं। अर्थात् कवि के द्वारा रचित रचना को काव्य कहा जाता है।

(ii) जो कवि कविता रचना करता है और अच्छा कर्म करता है, उसे काव्य कहते है।

(iii) आत्मा की अनुभूति काव्य है।

(iv) अगर भारतीयशास्त्र में देखेंगे तो काव्य शब्द का प्रयोग प्राचीनकाल से चला आ रहा है।

काव्य लक्षण को तीन धारा में बाँटा गया है -

(i) संस्कृत आचार्य
(ii) हिंदी आचार्य
(iii) पाश्चात्यकार

(1) संस्कृत आचार्य :-

(1) भामह -

'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'

अर्थात शब्द और अर्थ से युक्त रचना ही काव्य है।

(2) आचार्य जगन्नाथदास -

~~रमणी~~ 'रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्'

(i) अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादन करनेवाला शब्द-समूह ही काव्य है।

(ii) शब्द के आधार पर रमणीयता देखने को मिलता है।

(3) आचार्य विश्वनाथ :-

'साहित्य-दर्पण' में आचार्य विश्वनाथ ने काव्य को रसात्मक वाक्य माना है-

'वाक्यं रसात्मक काव्यम्।'

(i) अर्थात् जिस काव्य में हमें रस मिलता है, उसे काव्य कहते हैं।

(ii) रसात्मक वाक्य को ही हम काव्य कहते हैं।

(4) आचार्य रुद्रट :-

'काव्यालंकार' के प्रमुख रुद्रट हैं।
'काव्यालंकार' में रुद्रट ने काव्य की परिभाषा इस प्रकार दी है-

'ननु शब्दार्थों काव्यम्।'

वे शब्द और अर्थ के सम्बन्ध को ही काव्य मानते हैं।

(5) दण्डी :-

'इष्टार्थ व्यवच्छिन्ना पदावली।'

अर्थात् इष्ट अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली पदावली।

(6) आनन्दवर्धन :-

(i) आनन्दवर्धन ध्वनि संप्रदाय के जनक माने जाते हैं।

(ii) आनन्दवर्धन के अनुसार काव्य की आत्मा 'ध्वनि' और शब्दार्थ 'शरीर' है-

(क) 'काव्यस्यात्मा ध्वनिः।'

(ख) 'शब्दार्थ शरीर' तावत्काव्यम्।

अर्थात् शब्दों के द्वारा ध्वनि उत्पन्न होती है, उसे काव्य कहते हैं।

(7) जयदेव :-

इन्होंने 'चन्द्रालोक' में यह घोषणा की है कि दोषविहीन, गुण और अलंकारों से युक्त, लक्षण, रस, रीति और वृत्ति से समुपेत वाक्य ही काव्य है-

'निर्दोषगुणालंकार लक्षणरीतिवृत्त वाक्यं काव्यम् ।'

(8) भोज :-

'सरस्वती कण्ठाभरण' में भोज लिखते हैं-

निर्दोष गुणवत् काव्यमलंकारैरलंकृतम् ।
रसान्वितं कविं कुर्वन् कीर्ति प्रीतिश्च विन्दति ॥

अर्थात् ~~जिस~~ काव्य दोषरहित, गुणयुक्त, ध्वनियुक्त, अलंकारयुक्त, रसयुक्त कीर्ति और सुख प्रदाता है।

(9) बाणभट्ट :-

इन्होंने वामन और मम्मट के मतों का समन्वय करते हुए लिखा है-

'गुणालंकार रीति- रसोपेतः ।'

अर्थात् रीति, रस, अलंकार, गुणयुक्त शब्दार्थ समूह ही काव्य है।

(10) कुन्तक :-

(i) इनकी काव्य परिभाषा भामह पर आधारित मानी गई है।

(ii) वक्रोक्ति संप्रदाय के प्रमुख कुन्तक माने जाते हैं।

(iii) जो कवि व्यापार (कैसे) के लिए काव्य की रचना करता है और उसे उससे आनन्द मिलता है, उसे काव्य कहते हैं।

(II) मम्मट :-
(i) 'काव्यप्रकाश' के प्रमुख मम्मट माने जाते हैं।
(ii) दोषरहित गुणों और अलंकारों से युक्त शब्दार्थ ही काव्य है।

(II) हिन्दी आचार्य :-
(i) केशवदास - दोषरहित, गुणसहित, अलंकारयुक्त, रसमयी रचना ही काव्य है। 'रामचंद्रिका'

(ii) देव - (शब्द रसायन)
शब्द सुमति मुख ते कढ़ै, लै पद वचननि अर्थ।
छन्द, भाव, भूषण, सरस, सो कहि काव्य समर्थ॥
अर्थात् जिस काव्य में अर्थ हो, छन्द भी हो और उस काव्य को पढ़ते वक्त उससे भाव भी निकले, वह काव्य सरल भी होना चाहिए। उस काव्य को वह समर्थ मानते हैं।

(iii) डॉ श्यामसुन्दरदास -
जिस पद में संगीत कला की छाया अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली दिखाई पड़ती है, उसे हम काव्य कहते हैं।

(iv) जयशंकर प्रसाद -
"काव्य आत्मा की संकल्पात्मक अनुभूति है। जिसका सम्बन्ध विश्लेषण विकल्प या विज्ञान से नहीं है। वह एक श्रेयमयी प्रेम-रचनात्मक ज्ञान-धारा है। वह सत्यं-शिवं-सुन्दरं, सार्वजनीनता, चिरन्तनता, अनुभूति और आदर्श की समष्टि है।" अर्थात् काव्य आत्मा की अनुभूति है, जो हृदय से निकलता है। उसका सम्बन्ध किसी विज्ञान से

नहीं बल्कि उसका सम्बन्ध प्रेम से है। इसलिए काव्य सत्यं-शिवं-सुन्दरं है और वह अनुभव और आदर्श की समष्टि है।

(v) सुमित्रानन्दन पन्त –
"कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है।"
अर्थात् जो हमारे जीवन में घटित हो रहा है और उसको लेकर कवि जो कविता लिखते है। उसे काव्य कहते हैं।

(III) पाश्चात्य आचार्य :–
(1) मैथ्यू आर्नोल्ड - ये काव्य को जीवन की आलोचना मानते हैं। अर्थात् जिस काव्य में जीवन के बारे में आलोचना किया जाता है।

"Poetry is at bottom a criticism of life".

(2) कार्लाइल - ये काव्य को संगीतमय विचार मानते हैं -

"Poetry, we will call musical thought."

(3) वर्ड्सवर्थ - ये काव्य को नैसर्गिक भावोद्रेक मानते हैं, जिसकी उत्पत्ति अनुभूति से होती है।

(4) ~~डब~~ डब्ल्यू, एच, हडसन - ये कविता को जीवन की व्याख्या मानते हैं, जो कल्याण की भावना द्वारा की जाती है।

(5) ड्राइडन - ये काव्य को संगीत मानते हैं।

(6) डॉ जॉनसन - ये कविता को सत्य और आनन्द के मिश्रण की कला मानते हैं, जिसमें बुद्धि की सहायता से कल्पना का प्रयोग होता है।

(7) पी. बी. शैली - इनके अनुसार, "कल्पना की अभिव्यक्ति ही कविता है।"

(8) एडगर ऐलन पो - इनके अनुसार, "सौन्दर्य की लयात्मक सृष्टि ही काव्य है।"

Unit-II

रस सिद्धांत

रस की परिभाषा :-

आचार्य भरतमुनि को रस संप्रदाय का मूल प्रवर्तक माना जाता है। उन्होंने अपने ग्रंथ 'नाट्य शास्त्र' में नाटक के मूल तत्वों का विवेचन करते हुए 'रस' का विवेचन किया है। वे 'रस' को नाटक का प्राण मानते हैं।

भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में जो रस सूत्र दिया वह निम्नवत है- "विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः" अर्थात् विभाव, अनुभव और व्यभिचारी भाव के (स्थायी भाव से) संयोग से रस की निष्पति होती है।

स्पष्ट है कि भरतमुनि ने यहाँ रस की परिभाषा नहीं दी है; अपितु रस निष्पति की प्रक्रिया का उल्लेख किया है।

रस का स्वरूप :-

भरतमुनि ने ही सर्वप्रथम रस के स्वरूप का विवेचन किया। वे स्वयं ही प्रश्न उठाते हैं- "रस इति कः पदार्थः" अर्थात् रस क्या पदार्थ है? फिर स्वयं ही इस प्रश्न का उत्तर देते हुए वे कहते हैं- 'आस्वाद्यत्वात्' अर्थात् रस में आस्वाद प्रदान करने के गुण होते हैं, इसलिए वह 'रस' कहा जाता है।

इस प्रकार भरतमुनि के अनुसार "रस नाटक का वह तत्व होता है जो कि सहृदय को आस्वाद प्रदान करता है और जिसके आस्वाद से वह हर्षित हो उठता है।"

डॉ. गणपतिचंद्र गुप्त के अनुसार, 'रस' एक मिश्रित तत्व है, जिसमें स्थायी भावों स के साथ भावों, अनुभवों का अभिनय मिश्रित रहता है। भावों, अनुभवों आदि से मिश्रित स्थायी भावों को जब अभिनय के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है तो उसे सामाजिक को जो आस्वाद प्राप्त होता है, वही रस है।

भरतमुनि के अनुसार रससूत्र की विभिन्न आचार्यों ने व्याख्या की है, किंतु उससे पूर्व हमें भरतमुनि के मत को जान लेना आवश्यक है।

भरतमुनि के अनुसार, "जिस प्रकार नाना प्रकार के व्यंजनों के मिश्रण से रस की निष्पति होती है, उसी प्रकार नाना प्रकार के भावों के संयोग से स्थायी भाव भी नाट्य रस को प्राप्त हो जाते हैं।" इस विवेचन के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं :-

* भरतमुनी के अनुसार रस आस्वाद्य होता है, आस्वाद नहीं।
* रस अपने में कोई अनुभूति नहीं है, अपितु वह अनुभूति का विषय है।
* रस विषयीगत न होकर विषयगत होता है।
* स्थायी भाव ही विभावादि के संयोग से रस रूप में परिणत होता है।
* रस का मूल आधार स्थायी भाव है। जो रस नहीं है, किंतु यही विभावादि के संयोग से 'रस' रूप में बदल जाता है।
* किसका स्थायी भाव रस रूप में बदलता - सहृदय का, कवि का, या नायक का? इस प्रश्न का उत्तर

देते हुए वे कहते हैं कि नायक'(अभिनेता) का स्थायी भाव ही रस रूप में बदलता है। जो उस समय लोक-सामान्या का प्रतिनिधित्व करता है।

* सहृदय रस का आस्वाद हर्ष आदि के रूप में करता है।
* भरतमुनि रस की व्याख्या 'विषयगत' रूप में करते हैं, 'विषयीगत' रूप में नहीं।

रस सूत्र के व्याख्याता आचार्य:—

भरतमुनि के रस सूत्र में 'संयोग' और 'निष्पत्ति' शब्द की व्याख्या अपेक्षित थी। इस रस सूत्र के प्रमुख व्याख्यात आचार्य चार हैं, जिनके नाम और मत इस प्रकार हैं- (1) भट्ट लोल्लट
(2) आचार्य शंकुक
(3) भट्टनायक
(4) आचार्य अभिनव गुप्त

⇒ भट्ट लोल्लट का मत 'उत्पत्तिवाद' या 'आरोपवाद' कहा जाता है।

⇒ आचार्य शंकुक का मत 'अनुमितिवाद' कहा जाता है।

⇒ भट्टनायक के मत को 'भुक्तिवाद' या 'भोगवाद' कहा जाता है।

⇒ अभिनव गुप्त के मत को 'अभिव्यक्तिवाद' कहा जाता है।

(1) भट्ट लोल्लट का उत्पत्तिवाद :-

रस सूत्र के प्रथम व्याख्याता आचार्य भट्ट लोल्लट हैं। इनके मत के अन्य नाम हैं- उपचयवाद, आरोपवाद।

भट्ट लोल्लट के अनुसार-

(1) रस की 'उत्पत्ति' होती है। उत्पत्ति के लिए कारण. कार्य, सहकारी कारण (उपकरण) से उत्पत्ति संभव होती है।
(2) स्थायी भाव ही परिपक्वता को प्राप्त होकर रस कहलाते हैं।
(3) विभाव, अनुभाव एवं संचारीभावों के संयोग से स्थायी भाव उपचित (परिपक्व) होकर रस कहलाते हैं।
(4) रस अनुकार्य में होता है, अर्थात रस मूलतः अनुकार्य (राम आदि मूल पात्रों) में रहता है। पर दर्शक अभिनेताओं पर राम आदि का आरोप कर लेता है। अतः अभिनेता (नायक) में भी गौण रूप से रस रहता है। इसी कारण लोल्लट के मत को 'आरोपवाद' भी कहा जाता है।
(5) संयोग एक मिश्रित प्रक्रिया है। मम्मट ने भट्ट लोल्लट के मत की व्याख्या करते हुए कहा है कि -
(अ) विभाव और स्थायी भाव के बिच जनक-जन्य (जन्म लेनेवाला) संबंध होता है।

ब. अनुभावों एवं स्थायी भाव के बीच (सहक) गमक-गम्य (सहक पेहचानने वाला) संबंध होता है।

स. संचारी भाव एवं स्थायी भाव के बीच पोषक

(पालनेवाला) - पोष्य (पलने / पालनेवाला) संबंध होता है।

6. संयोग का अर्थ है - उत्पाद्य - उत्पादक संबंध।
7. भट्ट लोल्लट के अनुसार 'निष्पत्ति' का अर्थ है - 'उत्पत्ति'।

भट्ट लोल्लट के मत की आलोचना करते हुए कहा गया है कि - रस निष्पत्ति में वे सहृदय का कहीं उल्लेख नहीं करते। वास्तविकता यह है कि उन्होंने सहृदय का उल्लेख तो नहीं किया किंतु उनका अभिप्राय यही था कि सहृदय ही राम आदि का अभिनय करने वाले पात्रों में मूल पात्रों का आरोप करता है और फिर इसी आरोपित पात्र में रस की प्रतीति करता हुआ स्वयं भी रसानुभूति करता है। किंतु यह संभव नहीं लगता क्योंकि रस - ज्ञानगम्य न होकर आस्वादनीय होता है। जब तक 'रति' भाव की अनुभूति सहृदय में नहीं होगी तब तक वह श्रृंगार रस की अनुभूति किसी अन्य को देखकर नहीं कर सकता।

आचार्य शंकुक का अनुमितिवाद :-

इस सूत्र के दूसरे व्याख्याता आचार्य शंकुक हैं। उन्होंने रस सूत्र की व्याख्या अनुमान प्रमाण के आधार पर की है। शंकुक के मत का सार इस प्रकार है -

(1) शंकुक के अनुसार सहृदय नट पर राम आदि पात्रों का आरोप नहीं करता अपितु 'अनुमान' कर लेता है। इसलिए उनका मत अनुमितिवाद कहा जाता है।
(2) न्याय शास्त्र के अनुसार प्रतीति चार प्रकार की होती है। यथा -

अ. राम को राम समझना - सम्यक प्रतीति
ब. राम है अथवा राम नहीं है - संशयात्मक (संदेह के रूप में) प्रतीति
स. राम को कुछ अन्य समझना - मिथ्या (हो सकता है कि कोई और है) प्रतीति
द. राम जैसा है - सदृश्य प्रतीति
राम के जैसा है - गुण, काम, तुरंग - घोड़ा / हाथी

चित्र तुरंगज्ञान इन चारों प्रतीतियों से भिन्न होता है, चित्र में बने घोड़े को देखकर यह कहना कि यह घोड़ा है, चित्र तुरंगज्ञान कहलाता है। इसी के आधार पर दर्शक अभिनेता पर राम की प्रतीति कर लेता है। नट की अभिनय शकुंतला के कारण इसी अनुमान किए गए पात्र में रति आदि भावों का भी अनुमान कर लेता है। इस विलक्षण अनुमान को 'कला प्रतीति' कहा जा सकता है।

(3) शंकुक का मत है कि 'रस निष्पत्ति' की रस समूची प्रक्रिया अनुकरण पर आधार है। नट-नटी वास्तविक राम-सीता के विभाव, अनुभाव का अनुसरण करते हैं। ये विभावादि वे ही हैं जिनका वर्णन कवि करता है। अर्थात् नट-नटी काव्यनिबद्ध 'राम' का अनुकरण करते हैं। मूल पात्र (ऐतिहासिक पात्र) का नहीं।

(4) अनुभावों का अनुकरण शिक्षा, अभिनय शकुंतला के बल पर होता है।

(5) शंकुक के अनुसार संयोग का अर्थ है 'अनुमान' और निष्पति का अर्थ है अनुमिति।

इस मत की आलोचना करते हुए कहा गया है कि अनुमान बुद्धि का विषय है और रस भावना से जुड़ा हुआ है। अतः दोनों की सम्मति नहीं बैठ सकती। भावों का अनुकरण नहीं किया जा सकता तथा रस का अनुमान भी असंगत ही प्रतीत होता है, भले ही इसे कला संबंधी विलक्षण अनुमान ही क्यों न माना जाए।

भट्टनायक का भुक्तिवाद :-

रस सूत्र के तीसरे व्याख्यात आचार्य भट्टनायक है। उनका सिद्धांत 'भुक्तिवाद' कहलाता है। उनके अनुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है और न अनुमिति होती है। अपितु रस की 'भुक्ति' होती है। रस निष्पत्ति में भट्ट नायक का सबसे बड़ा योगदान 'साधारणीकरण' का सिद्धांत है। भट्ट नायक के अनुसार शब्द रूप काव्य के तीन व्यापार होते हैं -

अ. अभिधा व्यापार
ब. भावकत्व व्यापार
स. भोजकत्व व्यापार

अभिधा से काव्य का शब्दार्थ समझ में आता है तथा भावकत्व से 'साधारणीकरण' होता है, जब कि भोजकत्व व्यापार से हम साधारणी साधारणीकृत स्थायी भाव का रस रूप में भोग करते हैं।

साधारणीकरण की परिभाषा करते हुए भट्टनायक कहते हैं-

"भावकत्व साधारणीकरण तेन हि व्यापारेण विभावदय च स्थायी साधारणी क्रियन्ते।"
अर्थात 'भावकत्व' साधारणीकरण है इस व्यापार से

विभावादि और स्थायी भाव का साधारणीकरण हो जाता है।

भट्ट नायक की प्रमुख मान्यताएँ निम्नत है -

1. भट्टनायक के भुक्तिवाद का मूलाधार संख्या दर्शन

2. संख्यादर्शन में प्रकृति को त्रिगुणात्मिका मानकर उसे सत, रज एवं तम से युक्त माना जाता है। सत में प्रीति, रज में अप्रीति तथा तम में विषाद की स्थिति होती है।

3. भट्टनायक के अनुसार रस निष्पत्ति का अर्थ है - भुक्ति तथा संयोग का अर्थ है - भोज्य-भोजक संबंध।

4. भावकत्व व्यापार से काव्य में वर्णित विभावादि किसी व्यक्ति विशेष के विभाव न रहकर सर्वसाधारण के विभावादि बन जाते हैं, इसी प्रक्रिया को साधारणीकरण कहा गया है।

5. साधारणीकरण होते ही सामाजिक के सत्व गुण का उद्रेक हो जाता है तथा रजो गुण एवं तमो गुण का शमन हो जाता है।

6. भावकत्व के उपरान्त भोज कत्व व्यापार- प्रारंभ होता है, जिसमें सहृदय अपने ही साधारणीकृत स्थायी भाव का रस रूप में भोग करता है।

7. अभिनेता का स्थान रंगमंच था किंतु भट्टनायक ने उसका स्थान सहृदय सामाजिक का हृदय बताया है।

8. भट्ट नायक यह स्वीकार करते है कि काव्यादि का आनंद लेते समय रजो गुण एवं तमो गुण की निवृत्ति हो जाती है और सत्व गुण का उद्रेक होने पर हम लोकोत्तर आनंद का अनुभव करते हैं।

आचार्य अभिनवगुप्त का अभिव्यक्तिवाद :—
रस सूत्र के चौथे व्याख्यात आचार्य अभिनवगुप्त है। उनके अनुसार रस की न तो उत्पत्ति होती है, न अनुमिति होती है और न ही भुक्ति होती है, अपितु रस की अभिव्यक्ति होती है। इसलिए उनका मत 'अभिव्यक्तिवाद' कहलाता है।

अभिनव गुप्त के अनुसार :—
1. रस व्यंजना का व्यापार है। जैसे मिट्टी में व्याप्त गंध जल के छिटे देने से व्यक्त हो जाती है, उसी प्रकार सहृदय सामाजिक के हृदय में वासना रूप से निरंतर विद्यमान स्थायी भाव विभावादि के द्वारा अभिव्यक्त हो जाते है।

2. रस व्यंग्य है जो व्यंजना का व्यापार है।

3. विभाव, अनुभव और संचारी भाव व्यंजक है जो स्थायी भाव को अभिव्यक्त करते हैं।

4. विभावादि सामान्य व्यापार में लौकिक होते हैं, किंतु काव्य और नाटक आदि में वे अलौकिक

हो जाते है।

5. विभावन व्यापार से स्थायी भाव को अंकुरित करता है, अनुभाव इसे अनुभव योग्य बना देते है और संचारीभाव अनुरंजन व्यापार से इस स्थायी भाव को पुष्ट कर देते है।

6. विभावादि की विशिष्टता का लोप हो जाने से वे स्थाईभाव सर्वसाधारण के बन जाते है। ये साधारणीकृत रूप में उद्‌बुद्ध हुए स्थायी भाव ही रस रूप में परिणत हो जाते है।

7. अभिनवगुप्त का रस सिद्धांत शैव मत पर आधारित है। जिस प्रकार यह जगत शीव की इच्छा शक्ति की अभिव्यक्ति है उसी प्रकार प्रेक्षक के मन में वासना रूप से अवस्थित स्थायी भाव की निर्विघ्न अभिव्यक्ति रस है।

8. रस ब्रह्मानंद सहोदर है। रस का आस्वादन एक विलक्षण और लोकातीत अनुभव है।

9. अभिनवगुप्त की व्याख्या में रस की सत्ता आत्मगत मानी गई है। रस सहृदय सामाजिक के हृदय में व्याप्त होता है।

10. अभिनवगुप्त के अनुसार निष्पत्ति का अर्थ है- अभिव्यक्ति और संयोग का अर्थ है व्यंग्य-व्यंजक संबंध।

रस की अवयाव

रस की अवयाव है - 1. स्थायी भाव
2. विभाव
3. अनुभाव
4. संचारी भाव

1. स्थायीभाव :-

जो भाव हृदय में सदैव स्थायी रूप से विद्यमान रहते हैं, किंतु अनुकूल कारण पाकर उद्बुद्ध होते हैं, उन्हें स्थायी भाव कहा जाता है। इसकी संख्या 9 मानी गई है। 1. रति, 2. उत्साह, 3. क्रोध, 4. जुगुप्सा, 5. विस्मय, 6. निर्वेद, 7. हास, 8. भय, 9. शोक, स्थायीभावों है। प्रत्येक स्थायीभाव से संबंधित एक रस होता है, जिसका विवरण इस प्रकार है -

रस और उनके स्थायी भावों

रस का नाम	स्थायी भाव
1. श्रृंगार रस	1. रति
2. वीर रस	2. उत्साह
3. रौद्र रस	3. क्रोध
4. वीभत्स	4. जुगुप्सा (घृणा)
5. उद्भुत रस	5. विस्मय (आश्चर्य)
6. शांत रस	6. निर्वेद (ग्लानि)
7. हास्य रस	7. हास (खुशी)
8. भयानक रस	8. भय
9. करुण रस	9. शोक

इनके अतिरिक्त २ रसों की चर्चा और होती है -

10. वात्सल्य रस — 10. संतान विसायक रति
11. भक्ति — 11. भगवद् विसायक रति

स्थायी भावों की संख्या ९ मानी गयी है। अतः मूलतः ९ रस ही माने गये हैं। रति के तीन भेद माने जा सकते हैं - दाम्पत्य रति, वात्सल्य रति, भक्ति संबंधी रति। इन तीनों से क्रमशः श्रृंगार, वात्सल्य एवं भक्ति रस की निष्पत्ति होती है। श्रृंगार रस को रसराज माना गया है।

२. विभाव:-

विभाव का अर्थ है कारण। जो व्यक्ति, पदार्थ अथवा बाह्य विकार अन्य व्यक्ति के हृदय में भावोद्रेक करता है, उन कारकों को 'विभाव' कहा जाता है। इन कारणों के भेद से विभाव के २ भेद हैं-

क. आलंबन विभाव (कारण)
ख. उद्दीपन विभाव (स्थायी भाव को जागृत करना।)

उदाहरण- पुष्प वाटिका में राम और जानकी घूम रहे हैं। जानकी के साथ उनकी सखियाँ हैं और राम के साथ लक्ष्मण। यहाँ जानकी के हृदय में जागृत 'रतिभाव' (स्थायीभाव) के 'आलंबन विभाव' हैं - राम। जानकी की सखियाँ जो उन्हें राम के दर्शन में सहायता पहुँचा रही हैं 'उद्दीपनविभाव' हैं।

३. अनुभाव:-

आलंबन और उद्दीपन विभावों के कारण उत्पन्न भावों को बाहर प्रकाशित करनेवाले कार्य

अनुभाव कहलाते हैं (विश्वनाथ - साहित्य दर्पण)।
उपर्युक्त प्रसंग में राम के दर्शन से या दर्शन के निमित्त सीता का संकोच या चकित होना 'अनुभाव' है। ऐसे स्थल पर राम या सीता किसी का एक दूसरे के प्रति कटाक्षपात, संकेत, रोमांच, लज्जा आदि अनुभाव के अंतर्गत आयेंगे। यहाँ राम सीता के अनुभावों के 'आश्रय' हो सकते हैं और सीता राम के अनुभावों को। अर्थात् हृदय में संचित रति आदि 'स्थायीभावों' का कार्य, मन और वचन की चेष्टा के रूप में प्रकट होना ही 'अनुभाव' है। अनुभावों के चार प्रकार होते हैं-

1. कायिक या आंगिक - शरीर की चेष्टाओं से प्रकट होना
२. वाचिक - वाणी से प्रकट होते हैं।
३. आहार्य - वेश भूषा, अलंकरण से प्रकट होते हैं।
४. सात्विक - सत्व के योग से उत्पन्न वे चेष्टाएँ जिन पर हमारा वश नहीं होता, सात्विक अनुभाव कही जाती है।

४. संचारीभाव :-

स्थायी भाव को पुष्ट करनेवाले संचारीभाव कहलाते हैं। ये सभी रसों में संचरण करते हैं। इन्हें व्यभिचारी भाव भी कहा जाता है। इनकी संख्या ३३ मानी गई है। इन स्थायी भावों के नाम इस प्रकार हैं-

१. निर्वेद २. ग्लानि (पश्चताप) ३. शंका ४. असूया ५. मद ६. श्रम ७. आलस्य ८. दैन्य ९. चिंता १०. मोह ११. स्मृति १२. धृति १३. व्रीडा (लज्जा) १४. चपलता १५. हर्ष १६. आवेग १७. जड़ता १८. गर्व १९. विषाद २०. औत्सुक्य २१. निद्रा २२. अपस्मार २३. स्वप्न २४. विबोध २५. अवमर्ष २६. अवहित्था २७. उग्रता २८. मति २९. व्याधि

CORE-12

Unit-III

रीति संप्रदाय :-

रीति संप्रदाय के प्रवर्तक -

(I) आचार्य वामन (8 वी. सदी) -

रीति शब्द की उत्पती रीङ् धातु से हुई है। जिसका अर्थ है मार्ग, पथ, गति, शैली आदि। आचार्य वामन ने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' सूत्रवृती में 'रीति' की परिभाषा देते हुए कहा है।

(II) "विशिष्ट पद रचना रीतिः"

अर्थात विशेष प्रकार कि पद रचना को 'रीति' कहते है। 'विशिष्ट' को स्पष्ट करते हुए वे पुनः कहते है।

"विशेषो" गुणात्मा

अर्थात यह विशिष्टता 'गुण' से आती है अर्थात काव्य में गुणात्मक पद रचना को 'रीति' कहते हैं। गुणात्मक से उनका अभिप्राय ओज, प्रसाद, माधूर्य आदि काव्य गुणों से है।

(I) ओज गुण :-

रचना का वह गुण जिससे पढने या सुननेवाले के हृदय मे उत्साह या जोस पैदा होता है, उसे ओज गुण कहते है।

(II) प्रसाद गुण :- प्रसाद का शाब्दिक अर्थ है- निर्मलता, खुशी जिस काव्य को पढ़ने या सुननेसे हमारा मन या हृदय जो है खिल जाता है या हृदयगत शान्ति का अनुभव होता है, उसे प्रसाद गुण कहते है।

(III) माधूर्य गुण :- किसी काव्य को पढने या सुननेसे हृदय मे जहाँ मधुरता का संचार होता है, उसे

माधुर्य गुण कहते है। यह जो माधुर्य गुण है वह विशेष रूप से श्रृंगार रस, शान्त रस, करूण रस में पाए जाते हैं।

आचार्य वामन ने 'गुणों' को विशेष महत्व दिया है। उनके अनुसार 'गुण' काव्य के नित्य धर्म है, जिनकी अनुपस्थिति में काव्य का अस्तित्व जो है असंभव है। गुणों को काव्य का शोभाकारक धर्म मानते हुए वे लिखते हैं:-

काव्य शोभायां कर्ता रो धर्म गुणं

अर्थात् गुण जो है काव्य के शोभाकारक का धर्म है।

रीति संप्रदाय को गुण संप्रदाय भी कहा जाता है।

गुणों के भेद -

आचार्य वामन के अनुसार गुण दो प्रकार के होते हैं - (I) शब्दगत - शब्दों में नीहित हो
(II) अर्थगत - अर्थ संबंधि

इनमें से प्रति एक के अन्तर्गत दस दस गुण हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं:- (I) ओज गुण
(II) प्रसाद गुण
(III) श्लेष गुण
(IV) समता गुण
(V) समाधि गुण
(VI) माधुर्य गुण
(VII) सौकुमार्य गुण
(VIII) उदारता गुण
(IX) अर्थव्यक्ति गुण
(X) कान्ति गुण

इस प्रकार वामन ने कुल २० गुण माने हैं।
रीति के भेद- आचार्य वामन ने रीति के तीन भेद माने हैं - (I) वैदर्भी रीति
(II) गौड़ी रीति
(III) पांचाली रीति

(I) वैदर्भी रीति -
इसमें माधुर्य व्यंजक वर्णों की योजना की जाती है। जो श्रुती मधुर एवं संगीतात्मक होते हैं। ललित पद योजना के कारण यह श्रृंगार, करुण, हास्य रसों की अभिव्यक्ति में सहायक होती है।

(II) गौड़ी रीति -
गौड़ी रीति में ओज पूर्णवर्णों की योजना की जाती है। संयुक्त व्यंजन, टा वर्ग, श ष आदि वर्णों का प्रयोग बहुलता से होता है। पदयोजना दिर्घ समासों से युक्त होती है। परुष वर्णों के कारण यह रीति, वीर, वीभत्स, रौद्र और भयानक रसों के लिए उपयुक्त मानी जाती है। वीर एवं रौद्र रसों का यह मूल आधार है। इसे परुषावृत्ति भी कहा गया है।
ओज गुण की व्यंजना के सभी उपादान इसमें उपलब्ध है।

(III) पांचाली रीति -
माधुर्य और सौकुमार्य गुणों से युक्त, शिथिल पदवाली वह रचना जिसमें लघु समासों का प्रयोग किया गया हो पांचाली रीति कहलाती है।
वामन के अनुसार वैदर्भी रीति में सभी गुण रहते हैं, जबकी गौड़ी रीति में केवल दो गुण

ओज और कान्ति विद्यमान होते हैं। पांचाली में भी केवल दो ही गुण माधुर्य और सौकुमार्य रहते हैं।

वामन ने 'वैदर्भी रीति' को सर्वश्रेष्ठ माना है, क्योंकि इसमें सभी २० गुण विद्यमान रहते हैं। इसलिए वे रीति को काव्य की आत्मा भी स्वीकार करते हैं।

आचार्य मम्मट ने रीति को वृत्ति कहा है। उन्होंने तीन वृत्तियों और तीन गुणों को स्वीकार किया है। माधुर्य, ओज, प्रसाद उनके द्वारा स्वीकृत वृत्तियाँ हैं-(I) उपनागरिका वृत्ति — जिसे वामन ने वैदर्भी रीति कहा है उसे ही मम्मट ने उपनागरिकावृत्ति की संज्ञा प्रदान की है। यह माधुर्य गुण से युक्त होती है और श्रृंगार, करुण आदि कोमल रसों का उपकार करती है।

(II) परुषावृत्ति — ओज गुण के व्यंजक वर्णों से युक्त रचना को मम्मट ने परुषावृत्ति कहा है। इसे वामन के अनुसार 'गौड़ी रीति' कहा गया है। यह वीर, रौद्र आदि कठोर रसों का उपकार करती है।

(III) कोमलावृत्ति - प्रसाद गुण से युक्त रचना को पांचाली-रीति या कोमलावृत्ति की संज्ञा प्रदान की गयी है।

आचार्य विश्वनाथ द्वारा किया गया रीति विवेचन- साहित्य दर्पण के रचयिता आचार्य विश्वनाथ ने रीति को पद संघटना का नाम दिया, पर उसे काव्य की आत्मा स्वीकार नहीं किया गया।

आनंदवर्धन -

आनंदवर्धन ने भी रीति पर विचार किया है और पद संघटना का नाम देकर उसका मूल आधार समास को माना है। यह गुणों पर अवलम्बित है और रसों को अभिव्यक्त करती है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि आचार्यों ने वामन के रीति सिद्धान्त को पूर्णतः स्वीकार तो नहीं किया पर वे उसके नितान्त उपेक्षा भी न कर सके। रीति भले ही काव्य का अनिवार्य तत्व न हो, पर उसका महत्व किसी न किसी रूप में आवश्यक है।